International Journal of Sanskrit Research 2015; 1(3): 44-46

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2015; 1(3): 44-46
© 2015 IJSR
www.sanskritjournal.com
Received: 27-02-2015
Accepted: 16-03-2015

दिलीप कुमार
शोध छात्र, एम. फिल् भारतीय भाषा केन्द्र, जवाहरलाल नेहरु विश्वविद्यालय, नई दिल्ली–110067

Correspondence
दिलीप कुमार
शोध छात्र, एम. फिल् भारतीय भाषा केन्द्र, जवाहरलाल नेहरु विश्वविद्यालय, नई दिल्ली–110067

बौद्ध धर्म के प्रचार में सम्राट अशोक का योगदान

दिलीप कुमार

अशोक प्राचीन भारत में मौर्य राजवंश का चक्रवर्ती राजा था। उसके समय मौर्य राज्य उत्तर में हिन्दुकुश की श्रेणियों से लेकर दक्षिण में गोदावरी नदी के दक्षिण तथा मैसूर तक तथा पूर्व में बंगाल से, पश्चिम में अफ़गानिस्तान तक पहुँच गया था। यह उस समय का सबसे बड़ा साम्राज्य था। एच. जी. वेल्स का कहना है कि ''अशोक का नाम बड़े–बड़े और विभिन्न उपाधियों वाले सहस्त्रों शासकों में, जिनका वर्णन इतिहास में आता है ,सितारे की तरह चमकता है। वोल्गा से जापान तक आज भी उसका नाम अत्यन्त सम्मान के साथ लिया जाता है। चीन, तिब्बत और भारत अशोक के सिद्धान्तों को छोड़ भले ही चुके हैं, किन्तु उसके महत्व की परम्परा को सुरक्षित रखे हुए हैं। कॉस्टेंटाइन और शार्लिमेन से भी कहीं बढ़कर इस समय लोग अशोक की स्मृति का मान करते हैं।''

अशोक चन्द्रगुप्त मौर्य का प्रपोत्र और बिन्दुसार का पुत्र था। अशोक के कई भाई थे, जो उससे ईर्ष्या रखते थे। बिन्दुसार की मृत्यु के पश्चात् अशोक के सौतेले भाई सुशीम को बिन्दुसार की इच्छा के अनुसार गद्दी मिलनी थी, परन्तु ज्यादातर मंत्री अशोक को राजा देखना चाहते थे। उनके सहयोग से और भाईयों की हत्या के बाद वो राजा बना। कहते हैं अशोक ने अपने 99 भाईयों का वध कर दिया था, एक भाई तिस्सा को छोड़कर। अशोक एक दुष्ट प्रकृति वाला और गुस्सैल राजा था। उसने अपने तकरीबन 300 मंत्रियों को शक की वजह से मार डाला था। उसने एक यातना गृह बनवाया था अपने विरोधियों के लिए, जिसे धरती पर नरक की संज्ञा दी गयी थी। उसके इन क्रूर कर्मों की वजह से उसे ''चंड अशोक'' कहा जाता था।

लगभग 260 ई0 पू0 में अशोक ने कलिंग राज्य के खिलाफ युद्ध आरम्भ कर दिया तथा कलिंग को जीत लिया। लेकिन जब अपनी विजय देखने के लिए वह युद्ध के मैदान में घुमने निकला तब वहाँ पर पड़े शवों और उन पर विलाप करते उनके सगे संबंधियों को देख कर उसके मन में करुणा जागी और वह कहने लगा ''यह मैंने क्या किया ? यदि यह विजय है तो पराजय क्या है ? यह न्याय है या अन्याय ? यह वीरता है या बर्बादी ? क्या मासूम बच्चों और स्त्रियों की हत्या वीरता है ? क्या यह मैंने अपने साम्राज्य के विस्तार और समृद्धि के लिए किया या दूसरे के राज्य के विनाश के लिए ? किसी ने अपना पुत्र खोया, किसी ने अपना पिता, किसी ने माँ, किसी ने अपना अजन्मा बच्चा, किसी ने पति, किसी ने पत्नी। यह शवों का ढेर क्या है ? क्या यह मेरी विजय का सूचक है या मेरी कायरता का ? यह कव्वे, गिद्ध शैतान के दूत हैं या मृत्यु के ?'' कलिंग युद्ध में हुए नरसंहार ने अशोक का ह्रदय परिवर्तित कर दिया। उसका ह्रदय मानवता के प्रति दया और करुणा से उद्वेलित हो गया। उसने युद्धक्रियाओं को सदा के लिए बन्द कर देने की प्रतिज्ञा की। यहाँ से आध्यात्मिक और धम्म विजय का युग शुरु हुआ। उसने बौद्ध धर्म को अपना धर्म स्वीकार किया।

काश्मीर के इतिहासकार कल्हण ने लिखा है कि अशोक ने बौद्ध धर्म को अपनाया और बहुत से स्तूपों का निर्माण करवायङ्[1] महावंश के अनुसार अशोक ने अपने शासन के छठे वर्ष में (तथा अन्य स्त्रोतों के अनुसार अपने शासन के 7वें वर्ष में), अनेक नगरों में 84,000 विहारों का निर्माण करवाया। इसके अतिरिक्त पाटलिपुत्र में अशोकाराम का निर्माण कराया।[2]

बौद्ध धर्म अपनाने के बाद उसने बौद्ध धर्म का प्रचार–प्रसार किया। उसने अपने पुत्र महेन्द्र तथा पुत्री संघमित्रा को बौद्ध धर्म के प्रचार के लिए श्रीलंका भेजा।[3] इसके अतिरिक्त भी अशोक ने अन्य धर्म प्रचारकों को भिन्न–भिन्न क्षेत्रों में बौद्ध धर्म के प्रचार के लिए भेजा–

धर्म प्रचारक	प्रचार का क्षेत्र
मज्झान्तिक	कश्मीर–गान्धार
मज्झिम	हिमालय
सोन व उत्तरा	सुवर्णभूमि
महाधर्मरक्षित	महाराष्ट्र

महादेव	महिषमण्डल (मैसूर अथवा मान्धाता)
महेन्द्र और संघमित्रा	श्रीलंका
महारक्षित	यवन देश
धर्मरक्षित	अपरान्तक
रक्षित	बनवासी (उत्तरी कन्नड़)

अशोक ने धर्म के प्रचार के लिए धर्म्मदान, धर्म संस्तव, धर्म–संविभाग, धर्म–संबन्ध, धर्म विजय, धर्म्मानुग्रह, धर्म यात्रा, धर्म मंगल, धर्म–स्तंभ, धर्म–श्रावण, धर्म्ममहामात्र, धम्मघोष, धर्मयुक्त, धर्मानुशष्टि, रज्जुक, प्रादेशिक, युक्त, स्त्रीध्यक्ष तथा पुरुष आदि कर्मचारियों की नियुक्ति। प्रान्तीय कुमारामात्यों को विशेष आदेश प्रसारित करना, धर्म सम्बन्धी लेखों को शिलाओं पर उत्कीर्ण करना तथा उनका विज्ञापन कराना। पुत्र महेन्द्र और पुत्री संघमित्रा को लंका धर्म–प्रचारार्थ भेजना। धर्मसभाएँ आयोजित करना तथा धम्म–सम्बन्धी उपदेश देना। बौद्ध धर्म के स्मरणार्थ तथा प्रचारार्थ, स्तूपों, विहारों तथा मठों आदि का निर्माण कराना। विदेशों में धर्म–प्रचारार्थ दूत भेजना। बौद्ध धर्म के नियम को सरल और संक्षिप्त बना देना। प्रजा के साथ पुत्रवत् व्यवहार करना। सार्वजनिक हित के कार्य करना। शासन में दयालुता की नीति का बर्ताव करना। बौद्ध धर्म सम्बन्धी तीर्थ स्थलों की यात्रा करना। बौद्ध संघ में कठोर नियमों को प्रचारित करना। बौद्ध धर्म प्रचारार्थ शिलाओं और स्तम्भों का निर्माण कराना। प्राणियों का वध निषेध करना (अहिंसा) आदि।

प्रियदर्शी सम्राट अशोक धर्म–प्रचारार्थ ही अपने नवम् शिलालेख में कहता है कि कोई दान या उपकार ऐसा नहीं है जैसा कि धर्म का दान या धर्म का उपकार है।

''सब्बदानं धम्मदानं जिनाति''[4]

सम्राट अशोक ने धम्म–मंगल और धर्म–दान को अत्यन्त ही कल्याणकारी और फलदायक बताया एवं इसके अतिरिक्त भेरीनाद के स्थान पर धम्मनाद (चतुर्थ शिलाभिलेख) और विहारयात्रा के स्थान पर धम्म–यात्रा (अष्टम शिलालेख) का आचरण इसी उद्देश्य से किया।

कोसम के स्तम्भ पर उत्कीर्ण कौशाम्बी के स्तम्भ लेख, सांची के लघु स्तम्भ लेख और सारनाथ लघु स्तम्भ लेख में (सम्राट् अशोक) कहते हैं कि मैंने भिक्षु और भिक्षुणियों के लिए एक मार्ग निर्धारित कर दिया है, संघ में फूट नहीं डालनी चाहिए। भिक्षु तथा भिक्षुणी दोनों का संघ, जब सूर्य और चन्द्रमा प्रकाशमान है और जब तक मेरे पुत्र और प्रपौत्र राज्य करेंगे, तब तक एक रहेगा। यदि कोई भिक्षुणी या भिक्षु संघ में फूट डालेगा तो उसको श्वेत वस्त्र पहनाकर (भिक्षु–भिक्षुणियों के संघ से) च्युत कर दिया जायेगा। क्योंकि मेरी इच्छा है कि संघ एक और चिरस्थायी रहे। कोसम के द्वितीय स्तम्भ लेख में देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा कहते हैं: ''धर्म करना अच्छा है। पर धर्म क्या है ? धर्म यही है कि पाप से दूर रहें, बहुत से कल्याणकारी या सद्कार्य करें; दया, दान, सत्य और शौच (पवित्रता) का पालन करें। जो इसके अनुसार कार्य करेगा वह पुण्य का काम करेगा। ''यही बात रामपुरवा के द्वितीय स्तम्भ लेख लौडिया–नन्दन–गढ़ के द्वितीय स्तम्भ लेख (लौडिया–अराराज के द्वितीय स्तम्भ लेख), दिल्ली–मेरठ के द्वितीय स्तम्भ लेख में भी मिलती है।

अशोक ने धर्म प्रचारार्थ प्राणियों का वध निषिद्ध कर दिया।[5]

रूपनाथ, सहसराम, गुजर्रा, गवीमठ, मास्की, वैराट, पाल्कीगुण्डू, ब्रह्मगरि, सिद्धपुर, जटिंगरामेश्वर, येर्रागुडी और राजुल–मन्दगिरी लघु शिलालेख में देवताओं के प्रिय ऐसा कहते हैं: ''ढाई वर्ष से अधिक हुए जब से मैं प्रगट रूप से शाक्य (बौद्ध या उपासक) हुआ, किन्तु अधिक उद्योग नहीं किया, परन्तु एक वर्ष से अधिक हुआ जब से मैं संघ में आया हूँ और तब से मैंने पूरी तरह उद्योग किया है। इस बीच भारत में (जम्बुद्वीप) जो देवता अब तक मनुष्यों के साथ नहीं मिलते–जुलते थे, वे अब मेरे द्वारा मनुष्यों से मिल गये हैं। यह हमारे उद्योग का ही प्रतिफल है। ''उपर्युक्त तथ्य पर डा0 भण्डारकर का विचार है: ''बौद्ध सम्राट् का आशय संभाव्यतः यह है कि उसके धर्म–प्रचार के परिणामस्वरुप बहुत से लोग इतने पवित्र और धार्मिक हो गये हैं कि उनमें से कुछ देवों के रुप में पैदा हुए हैं और अपनी मृत्यु के बाद उनसे मिल गये हैं और अन्य लोग जो जीवित है अपने अगले जीवन में देवों के साथ मिल जाएँगे।''[6]

अशोक ने धर्म प्रचार के लिए धर्म–श्रवण कराया और धर्म का उपदेश दिया। अपने उपदेशों का प्रचार और विस्तार करने के लिए पुरुष नामक राज कर्मचारी की नियुक्ति की। इसी उद्देश्य को ध्यान में रखकर उसने धर्म स्तम्भ बनवाये, धर्म महामात्र नियुक्त किये और धर्म की घोषणाएँ निकाली। धर्म– महामात्रों की नियुक्ति सभी संप्रदायों (यथा ब्राहमण–श्रवण, आजीविक, निर्ग्रन्थ और बौद्ध भिक्षुओं के संघों में) के मध्य की। इन महामात्रों का कार्य अन्य कार्यों के अलावा सभी सम्प्रदायों का निरीक्षण भी करना था, अनेक जनहित कार्य भी किये। उसने मनुष्यों में धर्म की अभिवृद्धि दो प्रकार से कराई अर्थात् एक धर्म के नियम द्वारा और दूसरे विचार परिवर्तन के द्वारा। धर्म–प्रचारार्थ उसने अपने कर्मचारियों को आदेश दिया कि ''जहाँ–जहाँ पत्थर के स्तम्भ या पत्थर की शिलाएँ हों वहाँ–वहाँ मेरे धर्म–लेख (धम्म–लिपि) खुदवाये जाएँ जिससे ये चिर–स्थायी रहें।[7]

देवताओं का प्रिय प्रियदर्शी राजा अपने शिलालेख 12 में सब संप्रदायों का (चाहे वे त्यागी हों और चाहे गृहस्थी) विविध दान और पूजा से सत्कार करता है। पर वह दान या सम्मान को उतना अच्छा नहीं मानता जितना सब संप्रदायों के सारतत्त्व की वृद्धि और एक–दूसरे के धर्म के ज्ञान को।'' इसके लिए उसने बताया कि सभी संप्रदायों के सारतत्त्व की वृद्धि तभी हो सकती है जब मनुष्य अपनी वाणी पर संयम रखे अर्थात् अपने संप्रदाय के सदृश दूसरे संप्रदाय की अकारण निन्दा न करें। अशोक कहता है कि ऐसे निन्दा करने से मनुष्य स्वयं अपने संप्रदाय को बडी हानि पहुँचाता है। अतः एक दूसरे के धर्म को सुनने और सुनाने की इच्छा के विचार से 'समवाय' अति आवश्यक है। क्योंकि देवताओं का प्रिय अर्थात् अशोक चाहता है कि सब संप्रदाय ज्ञान से पूर्ण और अच्छाई पैदा करें। इसी लक्ष्य को ध्यान में रखकर उसने धर्म महामात्रों, स्त्रयीध्याक्षों, ब्रजभूमि को तथा अन्य अधिकारी वर्गों की नियुक्ति की। इससे यह फल निकलता है कि अपने संप्रदाय की उन्नति होती है ओर धम्म का प्रकाश (धम्मसदीपना) होता है।

अशोक के 'धम्म' शब्द का अर्थ ''दासों और सेवकों से सम्यक् व्यवहार किया जाए, माता–पिता की उचित सेवा की जाए, मित्रों, परिचितों, संबंधियों, ब्राह्मणों और श्रमणों को दान दिया जाए, प्राणियों की हिंसा न की जाए अर्थात अहिंसा। पिता, पुत्र, भाई, स्वामी, मित्र, परिचित, संबंधी और पडोसी को यह कहना चाहिए कि ये पुण्यकारी कार्य हैं और इन्हें अवश्य करना चाहिए। इससे इस लोक तथा परलोक दोनों में अनन्त पुण्य प्राप्त होता है। अतः अशोक का 'धम्म' शब्द केवल बौद्ध धर्म का सूचक नहीं हो सकता। अपितु उसने सभी धर्मों के लिए 'धम्म' शब्द का प्रयोग अपने अभिलेखों में किया है। पर आदर्श की बात यह है कि बौद्ध धर्म का महान उपासक होते हुए भी वह अन्य सम्प्रदायों के साथ सम्यक् व्यवहार करता था। उसके राज्य में सभी धर्म परस्पर फल–फूल रहे थे। यह भी बात स्मरणीय है, कि उसका धर्म राजनीतिक प्रवृतियों से विरहित था।

इतना सुन्दर धर्म विश्व के किसी शासक के युग में न था। अशोक ने धम्म का जो प्रचार–प्रसार या उपदेश दिया, वह निष्पक्ष भाव से समन्वित है। इसके पीछे कोई राजनीतिक उद्देश्य नहीं छिपा था जब कि विश्व के सभी सम्राटों के धर्म में कोई न कोई राजनीतिक उद्देश्य या स्वमहत्वाकांक्षा की भावना छिपी रहती थी। अशोक ने उन्मुक्त कंठ से जो धम्म–नाद किया है वह अन्यत्र अप्राप्य है। इतना तो हमें अवश्य मानना पडेगा कि अशोक का धम्म सब धर्मों में सामान्य रुप से विद्यमान साधारण कर्त्तव्यों का संग्रह न था, बल्कि बौद्ध धर्म द्वारा उपासक के लिए निर्धारित धार्मिक कर्त्तव्यों का संग्रह ही था।

स्तम्भ लेख सात के प्रारम्भ ही में उसने अपनी प्रजा के 'धम्म' के प्रचार के लिए अपनी अत्यधिक हार्दिक चिन्ता प्रकट की है। वह कहता है कि पहले भी राजाओं ने यह चाहा था कि लोगों में धम्म बढ़े जिससे उनकी उन्नति हो पर लोगों में इस प्रकार की उन्नति नहीं हुयी तो किस प्रकार मनुष्यों में धर्माचरण बढ़ सकता है? किस प्रकार धर्म द्वारा उनकी उन्नति हो सकती है? किस प्रकार मैं उनके

धार्मिक भावनाओं की अभिवृद्धि कर उनका उत्थान कर सकता हूँ? इस विषय में धम्म की प्रज्ञप्ति कराऊँ और लोगों में धम्म सम्बन्धी शिक्षा (धम्म अनुरक्ति) देने की आज्ञा कराऊँ उसको सुनकर स्पष्ट होता है कि धम्म के प्रचार का प्रश्न उसके मन में बहुत समय से गूँज रहा था केवल वही नहीं बल्कि अन्य राजा लोग भी उसके प्रचार की बात सोच रहे थे पर वे प्रचार कार्य में समर्थ न हो सके। निष्कर्ष रूप में हम यही कह सकते हैं कि अशोक ने बौद्ध धर्म के प्रचार एवं प्रसार के लिए बहुत ही प्रशंसनीय कदम उठाए एवं बौद्ध धर्म को न केवल भारत अपितु सम्पूर्ण विश्व में फैलाया। डा. आर. के. मुखर्जी का कहना है कि ''सम्पूर्ण इतिहास में कोई भी राजा ऐसा नहीं, जिसका जीवन मानव या राजा अशोक की तुलना में लाया जा सके। सम्राट अशोक की महत्ता को स्पष्ट करने के लिए उसकी तुलना इतिहास की अन्य विभूतियों से की गई है। इस तुलना में अशोक के सम्मुख अनेक नवीन और प्राचीन, ईसाई और यवन, आस्तिक और नास्तिक आदि अनेक व्यक्तियों को खड़ा किया गया है। अशोक ने स्थानीय धर्म को विश्वधर्म का रूप दे डाला था। धर्माभिवृद्धि के लिए उसने जो कार्य किए हैं वह कार्य विश्व के किसी भी सम्राट ने नहीं किए हैं।

सन्दर्भः

1. राजतरंगिणी,1,पृ0102
2. इण्डि0 एण्टि0, 20 ,233, नं0 18
3. डा0 मुकर्जी,राधाकुमुद,अशोक पृ0132
4. धम्मदपा,354, उद्धृत बाई सोनार्ट
5. दिल्ली–टोपरा का पंचम स्तम्भ लेख
6. अशोक, पृ0 118
7. दिल्ली–टोपरा का सप्तम स्तम्भ लेख